सहज कविता

अद्यतन कविता की त्रैमासिकी

प्रस्तुत अंक के प्रमुख रचनाकार
रामस्नेही 'यायावर', डोमन साहू 'समीर',
दया कृष्ण विजय, आदर्श मदान, रामेश्वर लाल 'तरुण',
राजकुमार सैनी, वेद प्रकाश 'अमिताभ',
श्रीरंजन सूरिदेव, वेद प्रकाश बटुक

अंक ९-१०

सम्पादक - सुधेश

सहज कविता

त्रैमासिक

वर्ष ३ जनवरी-मार्च, अप्रैल-जून १९९६ अंक ९-१०

क्रम			पृ० संख्या
सहज कविता की समस्याएं		-सम्पादकीय	३
गीत -	राम स्नेही लाल शर्मा, 'यायावर'		७
	डोमन साहु 'समीर'		७
	कुसुमांजलि शर्मा		८
ग़ज़ल	पूर्णिमा पूनम		८
	दया कृष्ण विजय		९
	संजर कानपुरी		९
	आदर्श मदान		१०
	हरे राम समीर		१०
	सुरेन्द्र चतुर्वेदी		१०
	मधुर नज्मी		११
कविताएं-	रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण'		१२
	रेखा व्यास		१२
	निशान्त		१३
	त्रिवेणी प्रकाश त्रिपाठी		१३
	सुधेश		१४
मुक्तक	लाखन सिंह भदौरिया,		१४
	महेन्द्र सिंह पुंडीर		१५
	राजकुमार सैनी,		१५
	वेद प्रकाश बटुक		१५
सहज कविता, कुछ प्रश्न और मान्यताएं		-वेद प्रकाश अमिताभ	१६
सहज कविता, कविता की सहजता		-श्रीरंजन सूरिदेव	२०
समकालीन हिन्दी गज़ल		-मधुर नज्मी	२२
सहज कविता की प्रासंगिकता		-सुरेश चन्द्र शर्मा	२४
मूल्यांकन		-विद्यानंदन राजीव	२६
		-सुधेश	२७
विचार-विमर्श			२८

सम्पादक - सुधेश प्रकाशक - श्रीमती सुशीला शर्मा
सम्पर्क - फ्लैट १३३५, पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-११००६७

मूल्य - आठ रुपये, वार्षिक ३२ रुपये (संस्थाओं के लिए चालीस रुपये)

'सहज कविता' के स्वामित्व तथा अन्य ब्योरे का विवरण

१. प्रकाशन का स्थान- दिल्ली
२. प्रकाशन की अवधि- त्रैमासिक
३. मुद्रक तथा प्रकाशक का नाम- श्रीमती सुशीला शर्मा
राष्ट्रीयता- भारतीय
पता- १३३५ पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
४. सम्पादक का नाम- डॉ० सुधेश
राष्ट्रीयता- भारतीय
पता- १३३५ पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
५. उन व्यक्तियों के नाम और पते जिनका पत्र पर स्वामित्व है तथा उन भागीदारों तथा शेयर होल्डरों के नाम और पते जो पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक शेयर रखते हों:-
श्रीमती सुशीला शर्मा
१३३५ पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-११००६७

मैं सुशीला शर्मा इसके द्वारा घोषणा करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधि कतम जानकारी और मेरे विश्वास में सही है।

-(हस्ताक्षर) सुशीला शर्मा

सहज कविता की समस्याएं

सहज कविता की पहली समस्या यही है कि उसे कैसे परिभाषित किया जाए । परिभाषा देने के अपने ख़तरे हैं, क्योंकि कोई परिभाषा सर्वांगीण नहीं हो सकती । हर परिभाषा में से कुछ न कुछ छूट जाता है । सहज कविता क्या है, इस पर मैंने 'सहज कविता' के प्रथम अंक (जनवरी १९९४) में विचार किया था, पर वे इस विषय पर अन्तिम शब्द नहीं थे । उसे स्पष्ट करने का उत्तरदायित्व मुझ अकेले पर नहीं है, बल्कि सभी कविता-प्रेमियों पर है । 'सहजता' यदि परिभाषित हो जाए तो सहज कविता की भी कोई मोटी परिभाषा बनाई जा सकती है । 'कविता में सहजता' शीर्षक सम्पादकीय लेख ('सहज कविता'-अंक २) में मैंने उसे जीवन की सहजता से जोड़ा था । आधुनिक जीवन की यान्त्रिकता के विपरीत जीवनदृष्टि में ही जीवन की सहजता मिल सकती है । विज्ञान, तकनीक, भौतिकता के उत्कर्ष वाले आधुनिक काल में विकसित यन्त्रों से नहीं बचा जा सकता, न उसकी जरूरत है, पर यांत्रिकता से तो ऊपर उठा ही जा सकता है । कविता की सहजता को मैंने कविता के कथ्य और उसके अभिव्यंजना शिल्प के सन्तुलन से भी जोड़ा था । उन तर्कों को यहां दोहराने की आवश्यकता नहीं है ।

'सहज कविता' के पिछले अंकों से प्रेरित होकर अनेक पाठक, कवि मित्र, पत्रिकाओं के सम्पादक सहज कविता को अपने ढंग से परिभाषित करते रहे हैं । उनके कुछ पत्र विगत अंकों में छप चुके हैं । कुछ सम्पादकों नें अपनी पत्रिकाओं में, जैसे 'नागरी संगम' (दिल्ली), 'विवरण-पत्रिका' (हैदराबाद), 'कविताश्री' (अण्डाल), 'हिन्दी प्रचारक' (वाराणसी), 'राजस्थान पत्रिका' (जयपुर) में, सहज कविता पर टिप्पणियां प्रकाशित हुई हैं । पूछा जा सकता है कि परिभाषाएं बहुत हो चुकीं, पर सहज कविता कहां है ? वस्तुतः सहज कविता को कोई परिभाषा नहीं कविता ही परिभाषित करेगी ।

मैं समझता हूं कि समस्या तब खड़ी होती है जब सहज कविता को सरल कविता, सपाट कविता, साधारण कविता या इस तरह के शब्दों से जोड़ कर देखने की कोशिश की जाती है । 'कविता में सहजता' शीर्षक लेख में मैंने सहजता को सरलता का पर्यायवाची नहीं माना था । सहज कविता साधारण कविता या सामान्य

कोटि की कविता भी नहीं है । इस प्रसंग में डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के शब्दों को उद्धृत करना उपयोगी है । उन्होंने एक पत्र में मुझे लिखा - "सहज कविता मात्र अभिधा या एकार्थ परक नहीं होती ; उसमें गहरी अगम्य गूंजें या ध्वनि या व्यंग्य हो सकता है । . . .सहज कविता तो हो पर वह साधारण या वैशिष्ट्य रहित न हो । " अर्थात् सहज कविता साधारण कविता नहीं है । उसे साधारण समझना सहजता को न समझने के कारण हो सकता है ।

सहज कविता की दूसरी समस्या छन्द से उस के सम्बन्ध को लेकर है । कुछ कवि मित्रों, जैसे बालकवि आर्य (बोकारो), चिरंजीत (दिल्ली), मधुर शास्त्री (दिल्ली), रामस्वरूप सिंदूर (कानपुर), हरिश्चन्द्र वर्मा (रोहतक), रवीन्द्र भ्रमर (अलीगढ़) का आग्रह है कि सहज कविता छन्दमय होती है अर्थात् छन्द कविता की सहजता के लिए अनिवार्य है । उनके विचार पिछले अंकों में छप चुके हैं । मेरा उनसे आंशिक मतभेद है । पूर्ण मतभेद इसलिए नहीं कि छन्दोबद्ध कविताओं में भी सहजता को मैं स्वीकारता हूं । पर उन छन्दोबद्ध कविताओं को, जो पद्यमात्र हैं, और जिनमें छन्दमयता के अतिरिक्त कविता का कोई गुण नहीं है, मैं उन्हें सहज कविता तो क्या कविता भी नहीं मानता । तब अगर यह कहा जाए कि सहज कविता के लिए छन्दमयता की अनिवार्यता नहीं है, तो क्या गलत है ? मैंने इसीलिए छन्द के स्थान पर लय को महत्व दिया था और लय को शाब्दिक माना था । पर इस धारणा के पीछे छन्द के प्रति कोई अवमानना नहीं है । पर यह तर्क मेरे गले नहीं उतरता कि जहां लय होगी, वहां छन्द की उपस्थिति भी मानी जाएगी । कारण यही कि प्रत्येक लय छन्द में परिणत नहीं होती । इस विषय में मेरे तर्कों की जानकारी के लिए मेरा लेख 'सहज कविता और छन्द' (सहज कविता-अंक ३, जुलाई-सितम्बर १९९४) अवलोकनीय है ।

ये पंक्तियां मैं इस लिए लिख रहा हू कि मैं अपने तर्क के प्रति आश्वस्त होकर भी इस प्रश्न को अन्तिम रूप से निर्णीत नहीं मानता । कवियों और कविता के मर्मज्ञों के लिए यह प्रश्न खुला है । यदि वे आज की कविता की छन्दहीनता और गद्यात्मकता से मेरी तरह असन्तुष्ट हैं, तो इस समस्या से उन्हें भी जूझना पड़ेगा । यदि वे स्वयं गद्यात्मकता की बाढ़ में बह गये, तो हिन्दी कविता की दुर्दशा पर उन्हें आंसू बहाने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है । मैं समझता हूं कि लघु पत्रिकाओं का कोई नोटिस नहीं लेता, उनकी आवाज़ प्राय: अनसुनी रह जाती है । पर सही बात को यदि मन्द या तेज़ स्वर में उठाया जाये, वह कुछ कानों तक

तो पहुंचेगी । आवश्यकता हो तो उसे तेज़ आवाज़ में भी उठाया जा सकता है, ताकि उसे कानों वाले बहरे भी सुन लें । बहुत सी तेज़ आवाज़ें एक साथ मिल जाएं तो वे नारा या आन्दोलन का रूप भी ले सकती हैं ।

सहज कविता की तीसरी महत्वपूर्ण समस्या उसके मूल्यांकन की है, सही मूल्याकंन की । कोई पूछ सकता है कि वह सहज कविता कहां है, जिसका मूल्यांकन किया जाए ? एक मित्र ने मुझे लिखा था कि बढ़िया से बढ़िया सम्पादकीय लेखों और सैद्धान्तिक चर्चा से कुछ नहीं होगा, जब तक सहज कविता को ही प्रस्तुत नहीं किया जाएगा । बड़ी माकूल बात है । साहित्य की किसी भी नवीन प्रवृत्ति का आधार और प्रमाण रचनाएं होती हैं । आलोचना तो एक बैसाखी है । पर आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास बताता है कि जिनके पास आलोचना और प्रचार माध्यमों की मज़बूत बैसाखियां थीं, वे साहित्य के नियामक बन गये । आजकल अनेक मठाधीशों के पास आलोचना की बैसाखी नहीं, आलोचना का डण्डा है जिसे चलाकर वे 'कविता की वापसी' और 'साहित्य में सन्नाटा' की घोषणाएं करते रहते हैं । इसके बावजूद मेरा विश्वास है कि सच्चे साहित्य में अपनी एक शक्ति होती है, जिसे दबाया नहीं जा सकता । तो मैंने सच्ची कविता की खोज शुरू की । अनेक कवियों को, जिनमें से अधिकांश को मित्र कह सकता हूं , पत्र लिखे, पर कुछ चुप हो गये, कुछ ने उपदेश लिख भेजे । नये कवियों का खूब सहयोग मिला, पर अनेक ने ऐसी 'विशिष्ट' रचनाएं भेजीं कि सहज तो वे क़तई नहीं थीं । कुछ कवि नाराज़ हुए । सम्पादक बनना क्या इतना सहज है ? एक मित्र ने बड़ा उपकार किया कि सहज कविता का इतिहास लिख भेजा । जान में जान आई । उस इतिहास को पढ़ा तो ज्ञान हुआ कि कबीर ने भी सहज कविताएं लिखीं थी और निराला का योगदान भी कम नहीं है । फिर नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल की विपुल रचनाओं के बावजूद कौन पूछ सकता है कि सहज कविता कहां है ? बल्कि आलोचकों से प्रश्न पूछा जाना चाहिए कि उन्होंने नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल का कितना और कैसा मूल्याकंन किया ? इलाहाबाद के एक आलोचक ने नागार्जुन को कवि ही नहीं माना ।

मेरी एक ग़ज़ल की पंक्ति है - 'प्रश्नों की तो भीड़ बड़ी है उत्तर देगा कौन ।' तो एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि यदि निराला, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं सहज कविता हैं, तो सहज कविता की चर्चा पहले क्यों नहीं शुरू हुई ? क्या यह आवश्यक है कि जब प्रश्न किसी का हो तो उसके उत्तर का

भार भी उसी का हो ? 'सहज कविता' के पिछले आठ अंकों में और प्रस्तुत अंक में सहज कविताएं प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है । यह फुटकर कोशिश स्वतन्त्र संग्रह का स्थान नहीं ले सकती । डॉ० रवीन्द्र भ्रमर ने सन् १९६८ में ऐसा संग्रह छापा था, पर वह आलोचकों की उपेक्षा की भेंट चढ़ गया । फिर भी लोग पूछते रहेंगे कि सहज कविता कहां है ?

सहज कविता के मूल्यांकन की जिस समस्या का मैंने उल्लेख किया उसके विषय में अपने अनुभव से इतना जोड़ सकता हूं कि विगत अनेक वर्षों में सहज तथा असहज दोनों प्रकार की कविताएं पढ़ता रहा हूं, जिनमें असहज कविताओं की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती गयी । इतना ही नहीं, मैंने उन असहज, कृत्रिम, गद्यात्मक कविताओं (?) को पुरस्कृत होते हुए भी देखा । उन पर विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ भी लिखे जाने लगे । दरबारी आलोचकों ने दरबारी कवियों की असहज रचनाओं का मूल्यांकन करते हुए तिकड़मबाज़ लेख लिखे । ऐसे आलोचकों और कवियों में अन्तर इतना था कि पहले तो मंत्रियों के दरबारी थे और दूसरे आलोचकों के दरबारी । तो इस आधुनिक प्रजातन्त्र में जिस समकालीन हिन्दी कविता का मूल्यांकन हुआ वह दरबारी कविता थी, आधुनिक दरबारी कविता, जिसे विशिष्ट पाठक ही समझ सकते हैं, वह जनता नहीं, जिसका नाम उसमें बार-बार मुहावरे की तरह उछाला गया है । ऐसा नहीं है कि अच्छी कविताएं लिखी नहीं जा रही हैं, पर अफसोस यह है कि अच्छी कविता और खराब कविता में अन्तर करने की आलोचकीय दृष्टि का बहुत अभाव हो गया है । इसके लिए पक्षधर, अवसरवादी, क्षेत्रीयतावादी, जातिवादी आलोचक उत्तरदायी हैं । इसी अभाव को मैं समकालीन कविता के मूल्यांकन की समस्या समझता हूं । इस अभाव को दूर किये बिना सहज कविता का सम्यक् मूल्याकंन कठिन है । हर युग के कवि की यह नियति है कि उसे आलोचक की भूमिका में उतरना पड़ता है । सम्भव है कि सहज कविता के कुछ रचनाकार इस चुनौती को स्वीकार करें ।

सहज कविता के सामने समस्याएं और भी हैं । आशा है कि उन पर अन्य मित्र लिखेंगे ।

-सुधेश

गीत

पैरों में जलता मरुस्थल है और पीठ पर दहका व्योम
हम सच के हो गये विलोम ।
नभ के हाथों में हथकड़ियां पहनाते चूहे बौने
बेच रहे हैं अब सूरज को कुछ जुगनू औने-पौने,
हल्ला बोल रहे किरणों पर रक्तबीज तिमिरासुर के
जाएं कहां खूंख्वार हवा से बचकर कातर मृगछौने,
हरिश्चन्द्र नीलाम हो रहे जिन्हें खरीद रहे फिर डोम ।
लक्ष्यहीन अनगढ़ सपनों की अन्धी दौड़ अंधेरा पथ
दुर्योधन इस बार सारथी बन बैठा अर्जुन के रथ,
पड़े हुए असहाय कहीं पर डैने टूटे हुए गरुड़
इठलाती वह छोटी चिड़िया मिली जिसे पीतल की नथ,
उसकी तो वंशी बजती है जलता है जल जाये रोम ।
मौलिक सर्जन भटके, फैलें फूलें अनुवादों के वंश,
हर वक्षस्थल में कुण्ठाएं चुभो रही ज़हरीला दंश,
सम्बोधन का घट सोने का लेकिन भीतर भरा ज़हर,
देवदत्त के नहीं मर रहा गौतम के हाथों से हंस,
सांस अहिल्या की कुटिया पर हम तो हैं अभिशापित सोम ।

-राम स्नेही लाल शर्मा 'यायावर' (फीरोज़ाबाद)

ठंड का महीना !
लगता है - दूभर है मधुआ का जीना ।
वसन सभी तार - तार,
बोरसी की आग छार ;
छूट रहा महंगी का नाम सुन पसीना !

कांप रहा तन थर - थर,
कंठ कर रह घर् - घर् ;

देह हुई ठट्ठर है, धंसा हुआ सीना !

खांस रहा है मधुआ,
जीना है भार हुआ ;
छोड़ नहीं सकता है फिर भी वो पीना !

-डोमन साहु 'समीर' (देवधर, बिहार)

इस अमावस में सूरज की बात करते हैं,
आप भी हमसे गहरा मज़ाक़ करते हैं ।
हमारे घर में छत नहीं
मन का आंगन भी छोटा है,
पेड़ पौधों से खाली धरती पै
घास का तिनका बाग लगता है,
ऐसे सुनसान प्यासे मरुथल में
आप फूलों की बात करते हैं ।
देख लेते हैं हम अंधेरों में
दियों में तेल नहीं पानी है,
सड़क के छोर भी पराये हैं
यहां अपनों की सूरतें बिगानी हैं,
ऐसे अजनबी से शहर में क्यों कर
आप अपनों की बात करते हैं ।

-कुसुमांजलि शर्मा (उरई उ. प्र.)

ग़ज़ल

बुलन्दियों से जो अक्सर अज़ान देता है,
अदालतों में वो झूठे बयान देता है ।
किसान कितने कड़े इम्तिहान देता है
वो अपने खून से बाक़ी लगाना देता है ।

अजीब शख्स है तलवार देके दुश्मन को
हमारे हाथ में खाली मयान देता है ।
दहकती धूप जो देते हुए नहीं झिझका
चांदनी चादर भी सिर पै तान देता है ।
पुजारी अम्नो-अहिंसा का है फिर भी
हमारे हाथ में तीरों कमान देता है ।
यही अदा उसे 'पूनम' बुलन्द कर देगी
बड़ा है मुझसे मगर मुझको मान देता है ।

-पूर्णिमा पूनम (जबलपुर)

उतरा सा चेहरा है,
घाव बहुत गहरा है ।
मुस्कायें तो कैसे
लज्जा का पहरा है ।
खंडहर सम्बन्धों पर
कटुता ध्वज लहरा है ।
होता प्रतिपक्षी प्रति
द्वेष सदा बहरा है ।

-दया कृष्ण विजय (कोटा)

आंसू न कहो इनको, आंखों में जो आये हैं,
दो चार दिये हमने, पलकों पे जलाए हैं ।
इन कांटों पै चल कर भी, पा जायेंगे हम मंज़िल
ये खार नहीं गुल हैं, अपनों ने बिछाए हैं ।
जा - जा के पलट आई, हर मौज किनारों से,
मौजों पै कहां पहरे, दरिया ने लगाए हैं ।
इक तुम ही नहीं आए, बरना मेरी पुरसिश को,
अपने तो रहे अपने, बेगाने भी आए हैं ।

-वेद प्रकाश शुक्ल 'संजर' कानपुरी

ज़ख्मी हैं अहसास हमारे,
कब आओगे पास हमारे ।
रातें मरुथल दिन बंजारे
सपने पर बिन्दास हमारे ।
पलकों पर ठहरे ये आंसू
मेहमां है कुछ ख़ास हमारे ।
अन्धे की लकड़ी हैं मानों
अनचाहे विश्वास हमारे ।
ज़िन्दादिली धरोहर रक्खी
तभी बचे आवास हमारे ।

-आदर्श मदान (अजमेर)

रात की कालिख में ये जुगनू की ज़िया है तो सही
दिल के बहलाने को इक लोकसभा है तो सही ।
फूल हैं, पेड़ हैं, पंछी हैं, हवा है तो सही
सहरा-ए-ज़ीस्त में इक ख्वाब सजा है तो सही ।
ये अलग बात कि हम लोग नहीं सुन पाए
कत्ल ने हमको खबरदार किया है तो सही ।
रेल के डिब्बों में झाड़ू लगा रहा बचपन
और हम कहते हैं, पांवों पै खड़ा है तो सही ।
शक का माहौल घने बादलों-सा फैला, मगर
धूप के टुकड़े-सा विश्वास बचा है तो सही ।
जब मिलता है वो झुंझला के ही बतियाता है
कुछ न कुछ उसको ज़माने से गिला है तो सही ।
अपनी तहजीब सदा अपनी हुआ करती है
थेगड़ों वाली सही अपनी क़बा है तो सही ।

-हरे राम समीर (फरीदाबाद)

आंखों में जैसे ही कुछ मंज़र आगे,
कितने ही अहसास मेरे अंदर आगे ।

अबकी बार शहर यूं भी नींद उड़ी,
घर की छत पर रखे हुए पत्थर जागे ।
चीखें गूंजा करीं रात भर गलियों में,
सोए सारे लोग दिवारो-दर जागे ।
मां बच्चों की नींद बेचती रही कहीं,
घर पर रोते बच्चों के बिस्तर जागे ।
यही सोच कि देगा छप्पर फाड़ खुदा,
सारी उम्र बस्तियों के छप्पर जागे ।
बादल चाहे सिर्फ गरज कर लौट गये,
दहशत में कितने ही कच्चे घर जागे ।
लगे चहकने कई परिन्दे यादों के,
कई दिनों के बाद जो उनके पर जागे ।

-सुरेन्द्र चतुर्वेदी (अजमेर)

जिन्दगी क्या से क्या हो गई,
बांसुरी थीं व्यथा हो गई ।
राम का आचरण देख कर
फिर अहिल्या शिला हो गई ।
जिस को तहज़ीब कहते हैं सब,
ख्वाब टूटा हुआ हो गई ।
इस सियाह दौर की हर प्रथा
रौशनी की कथा हो गई ।

-मधुर नज्मी (मऊ, उ. प्र.)

कविताएं

फ्रैक्चर

मैंने मैडिकल रिपोर्ट लिखी
आंख गड़ा
आदमी का एक्सरे देख कर ।
यों तो मांसल ताज़ा चुस्त
माल मते से तन्दरुस्त
बस भीतर आत्मा में मल्टीपल फ्रैक्चर ।

-रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' (सोनीपत)

मां से

अब ढूंढती हूं
किसी बचपन में
तुम्हारा ही गया बचपन
किसी यौवन में
तुम्हारा धूप सा यौवन
पड़ौसी के बुढ़ापे में
तुम्हारा ही बुढ़ापा ।
मां ! जब तक रहा आंचल तुम्हारा
मेरे शीश पर
बस वही था आखिरी सच
दूर होना एक सपना
क्या पता था कभी सपने
सत्य बन कर टीसते हैं ।

-रेखा व्यास (दिल्ली)

नींद

दिनचर्या में व्यस्त
सदा के टूटे हम
सिर्फ नींद में ही
जी पाते हैं मनमाफ़िक़
लेकिन कभी कभी दिन के पहाड़
सपनों में आकर नींद उड़ा जाते हैं ।

-निशान्त (हनुमान गढ़, राजस्थान)

प्रतीक्षा

निर्भय दौड़ रहा है अन्धकार का राक्षस
ज़हरीला झाग उगलता
क़ैद कर लिया है तमाम लोगों ने अपने को
भय आशंका और स्वार्थ की दीवारों में ।
कौन कहां जो आगे बढ़कर
काटे राक्षस के पैरों को
और चीर दे इस की छाती
प्रकाश-आरे से ।
सिर्फ प्रतीक्षा में हैं सब
किसी अन्य के आने की
पराजय की आशंका
पहल के साहस को निगल गई ।

-त्रिवेणी प्रकाश त्रिपाठी (कलकत्ता)

शब्दों से बाहर की दुनिया
महामहिम की दुनिया में
बिखरी वादों की सुघड़ चांदनी
आश्वासन की शहनाई गूंज रही,
ऊंचे सिद्धान्तों के शिखरों से
पिघल रहा धीरे-धीरे
जड़ स्वार्थों का हिम ।
हर नया मसीहा
दिखा रहा हर रोज़ नयी दुनिया
शब्दों के इन्द्रजाल में
फंसा रहा जनजन के मन
धूरे पर शब्दों की उलटी कर
वह समाज बदलेगा ।
शब्दों के जादूगर भी
जीते हैं शब्दों की दुनिया में
यद्यपि एक बड़ी दुनिया है
शब्दों से बाहर
पर्वत सी ठोस
जो नहीं वायवी
जिसे देख कर भी नहीं देखती पीली आंखें,
यह पाषाणी दुनिया
क्या शाब्दिक क्रीड़ा मौखिक मैथुन से बदलेगी ?

-सुधेश

मुक्तक

हम बुझेंगे ही नहीं ऐसे जले हैं,
तन धधकती आग में फूले फले हैं,
पीर रो रो कर स्वयं मीरा बनी है,
अश्रुकण मन में जगाते हौसले हैं ।

मैं तुम्हारे दर्द की आवाज़ हूं,
यह तुम्हारी देन है जो आज हूं
बस तुम्हीं से बोलता है मौन मेरा
मौन का मतलब नहीं नाराज़ हूं ।

-लाखन सिंह भदौरिया 'सौमित्र' (मैनपुरी)

हम व्यथाओं के धरातल पर सदा चलते
फिर हमेशा क्यों तुम्हारी आंख में खलते
तुम न हमको आग दो अपनी घृणा की
हम स्वयं अपने दु:खों की आग में जलते ।

-महेन्द्रसिंह पुंडीर (देहरादून)

लिक्खे हुए को मेरे कभी गुनगुना के देख,
इन फ़ासलों को लांघकर करीब आ के देख,
कितना है तुमुलनाद व सरगम मेरे भीतर
सीने पै मेरे अपनी कनखियां लगा के देख ।
कितने दिनों से ज़ख्म कुरेदा नहीं हमने,
कितने दिनों से खुद को सहेजा नहीं हमने,
कितने दिनों से छाए हुए आप ज़हन में
कितने दिनों से आप को देखा नहीं हमने ।
तेरी आवाज़ कैसी पुरनम है
दिल के पत्ते पै जैसे शबनम है,
मेरे माथे का दर्द जाता रहा
तेरे हाथों में कैसा मरहम है ।

-राजकुमार सैनी (दिल्ली)

बस मुखौटे ही चन्द बदले हैं,
कैंचुली के ही रंग बदले हैं,
ज़हर, फन, सांप कुछ नहीं बदले
काटने के ही ढंग बदले हैं ।

-वेदप्रकाश बटुक (बर्कले, अमेरिका)

सहज कविता : कुछ प्रश्न और मान्यतायें

'आह से उपजा होगा गान', 'जल कर चीख उठा / वह कांवे था', 'छिपाने को छिपा लेता विकल चीत्कार मैं सारा' आदि कविता संबंधी मंतव्यों और वक्तव्यों से जो एक सत्य छन कर सामने आता है, वह यह है कि कविता का संबंध मन के सहज आवेग से है । 'सहज कविता' की 'अवधारणा' (मार्च १९६७) प्रस्तुत करते हुए डॉ० रवीन्द्र भ्रमर ने 'यथार्थ अनुभूति - संवेग' से जन्मी अभिव्यक्ति को 'सहज' की संज्ञा दी थी । यह आकस्मिक नहीं है कि 'सहज कविता' की चर्चा फिर से शुरू करते हुए डॉ० सुधेश ने 'सहजता' को कविता का आंतरिक गुण क़रार दिया है : "सहजता कविता पर आरोपित कोई बाहरी साधन नहीं है, बल्कि कविता का एक आंतरिक गुण है, जिसका संबंध कविता की प्रकृति से भी है ।" (सहज कविता, अप्रैल-मई-जून १९९४, पृ० ३) । कविता को सहज मानने या बनाने की सोच एकदम नयी नहीं है, इस तथ्य को डॉ० सुधेश ने 'स्वाभावोक्ति' को उद्धृत कर स्मरण कराया है । लेकिन जब कभी कविता या कहानी में 'सहजता' की मांग उभरी है तो उसके कुछ तात्कालिक कारण हैं । उनमें एक कारण समकालीन कविता का अतिवौद्धिक - गद्यात्मक स्वरूप भी है ,जिसे हिन्दी कविता की मुख्य धारा मान कर विवेचित किया जाता रहा है । 'सहजता' की अवधारणा उन कवियों-आचार्यों की अतिरंजनात्मक सोच का प्रतिवाद भी हो सकता है, जो 'कविता' को 'कला' ही नहीं मानते अपितु इसे अनिवार्य रूप से 'कृत्रिम' भी घोषित करते हैं । डॉ० रवीन्द्र भ्रमर द्वारा प्रस्तुत 'सहज कविता' की अवधारणा पर अज्ञेय जी की निम्नलिखित प्रतिक्रिया को इस तरह की विचारणा का प्रतिनिधि माना जा सकता है : "कोई भी कविता सहज नहीं होती । बल्कि सब कविता कृत्रिम भी होती है । जहां अनुशासन है, आत्मचेतना है, कांक्षित संप्रेषण है, वहां सहजता या आत्यंतिक अकृत्रिमता हो कैसे सकती है ?"

अज्ञेय की आपत्ति का उत्तर सहज कविता के प्रस्तावकों - उन्नायकों - समर्थकों ने अपनी - अपनी तरह से दिया है । त्रिवेणी प्रकाश त्रिपाठी ने जहां अज्ञेय जी द्वारा 'सहज' के कोशगत अर्थ तक सीमित रहने पर क्षोभ जताया, वहीं यह जानना चाहा कि 'सहज कविता ने आत्यंतिक अकृत्रिमता' का दावा कब किया ? वह अत्यधिक बौद्धिकता मैनरिज्म और क्राफ्टमैनशिप अर्थात् अत्यधिक

कृत्रिमता को अनुचित और अनुपयुक्त मानती है ।'' डॉ० सुधेश ने कविता की सहजता को जीवन की सहजता से संबद्ध माना है । उन्हीं के शब्दों में : "कविता की रचना एक सहज प्रक्रिया इस अर्थ में भी है कि उसका उत्स वास्तविक जीवन है । उसमें जीवन की वास्तवकिता व्यंजित होती है । . . .कविता की रचना - प्रक्रिया जीवन-प्रक्रिया से जुड़ जाती है । कविता और जीवन में कोई अंतर्विरोध नहीं रहता । जीवन में कुछ हो और कविता में कुछ और हो तो वह सहजता की स्थिति नहीं है, विषमता और अन्तर्विरोध की स्थिति है । कविता की सहजता जीवन की सहजता तथा जीवनबोध की सहजता से धनिष्ठ संबंध रखती है ।'' (सहज कविता - अंक २) यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि 'सहजता' जिस जीवन की वास्तवकिता से संबद्ध है, वह कौन सा जीवन है, किसका जीवन है ? आम तौर पर मध्यवर्गीय जन ही कविता के पाठक-भावक रहे हैं। निश्चय ही उन्हें मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ अधिक आश्वस्त करता होगा । इसके विपरीत अधिसंख्यक दलित-शोषित समुदाय के लिए संभवत: मध्यवर्गीय जीवन में बहुत रुचि और आकषर्ण न हो । यह तो निश्चित है कि अब सामंतों - पूंजीपतियों के जीवन-चरित्र कविता के केन्द्र में नहीं हो सकते । इसीलिए डॉ० सुधेश कविता को 'भूमिपुत्र' से जोड़ते हैं और 'धरती की कविता' की मांग करते हैं - "जो लोग धरती से जुड़े हैं, धरती की कविता लिख रहे हैं । उनकी खुरदुरी सपाट कविता कला से खाली नहीं है । जो दरबारों से जुड़े हैं, वे कला की बात कर रहे हैं । जो धरती से जुड़े हैं, वे सिर्फ कविता के प्रति चिन्तित हैं ।''
(सहज कविता-अंक-६, अप्रैल-जून १९९५)

इसमें संदेह नहीं है कि अपनी ज़मीन से जुड़ाव कविता को सहज, संप्रेषणीय और दीर्घजीवी बनाता है । कबीर, तुलसी, सूर आदि इसीलिए कालजयी हैं कि वे अपने परिवेश, अपनी ज़मीन से अनुभूति के स्तर पर गहरे जुड़े हुए हैं । जब कभी आयातित विचार-सरणि या फैशन कविता पर हावी हुआ है या कविता क्राफ्ट या कला के रूप में ग्राह्य हुई है, तब कविता की सहजता, पर आंच आयी है । डॉ० सुधेश ने कविता को 'कला' मानने की पाश्चात्य अवधारणा से असहमति जताई है : "भारतीय मनीषा कविता को कला से अलग मानती थीं पर आधुनिक कवि कविता को कला बनाने के चक्कर मे लगे हुए हैं ।'' वे स्पष्ट करते हैं - ". . .कविता अनिवार्यत: कला नहीं है । वह जीवन की तरह सहज है । कला कृतिमता का ही दूसरा नाम है । कविता में जहां कृत्रिमता है, विषमता है वहां

सहजता नहीं हैं ।'' इसका यह अर्थ नहीं है कि सहज कविता का कलात्मक अव्यिंजना से कोई वैर है । लेकिन डॉ० सुधेश कविता की पहली आवश्यकता उसका 'कवितापन' मानते हैं । 'कवितापन' का भाष्य करते हुए उन्होंने कहा है - "कविता का कवितापन सार्थक शब्द की खोज में है, उस शब्द की खोज में जो कवि के अभिप्रेत अर्थ को व्यंजित एवं संप्रेषित कर सके । काव्य-शब्द की कल्पना उसके अर्थ के बिना नहीं की जा सकती । तो कविता का कीर्तिमान शब्द की खोज से आगे बढ़कर उसके अर्थ में निहित है । अर्थ की दिशा का निश्चय कवि के भाव या विचार से होता है और भाव कवि के यथार्थ अनुभवों की उपज है । . . .कविता की सार्थकता पहले इस बात में है, कि वह कहती क्या है । वह कैसे कहती है, यह प्रासंगिक आवश्यकता है . . . ।'' (सहज कविता अंक-६ अप्रैल-मई-जून १९९५)

कवि के भाव या विचार से अर्थ की दिशा का निश्चय होने का सीधा अर्थ है कि खरी अनुमति और सुस्पष्ट विचार धारा के अभाव में 'कवितापन' पूर्ण नहीं हो सकता । यह भी देखना समीचीन होगा कि कविता किसके पक्ष में खड़ी है ? यदि कविता की मुद्रा सहज है, लेकिन वह 'हो रहा है जो यहां सो हो रहा' की प्रतीति कराके खत्म हो जाती है तो इस तरह की कविता पर प्रश्नचिन्ह लगाया जा सकता है । वास्तविकता के अंकन के साथ जनसाधारण की पक्षधरता अवमूल्यों का तिरस्कार, विसंगतियों पर प्रहार आदि भी 'सहजता' की अवधारणा में अनिवार्यतः अन्तर्निहित होने चाहिएं ।

कविता में सहज अभिव्यक्ति के कायल कवि-समीक्षक इस तथ्य को जानते हैं कि सूरज निकला चिड़िया बोली, पद्य है, लेकिन कविता नहीं है । डॉ० सुधेश ने 'सहज कविता' अंक-१ में उस गद्यात्मकता का विरोध किया है, जिसके फलस्वरूप हिन्दी कविता के पाठक लगातार कम हुए हैं । कलात्मकता या शिल्प-सौन्दर्य का सहज कविता की अवधारणा से विरोध नहीं है । इसमें एक ओर 'लयात्मकता' जरूरी समझी गयी है तो दूसरी ओर संप्रेषण-शक्ति की उपस्थिति को अनिवार्य समझा गया है । 'सहज कविता' संकलन की विज्ञप्ति (१९६७) का प्रारम्भिक वाक्य ही संकेत करता है कि 'सहज कविता' की असाध्यवीणा को साधना सरल कार्य नहीं है "टेढ़ी-निरर्थक रेखा खींचना आसान है किन्तु सहज-सार्थक रेखा खींचना मुश्किल ।'' डॉ० सुधेश कविता के सामान्य पाठकों तक संप्रेषण को अनिवार्य मानते हैं : "जो कविता सामान्य पाठकों तक पहुंचती अथवा बहुत थोड़े और विशिष्ट पाठकों द्वारा ही ग्राह्य होती है, वह अपनी प्रतीक योजना, विम्बात्मकता,

आलंकारिकता के बावजूद सहज नहीं है ।. ..जिस कविता के अभिव्यंजना-शिल्प में सहजता स्वाभाविकता - मार्मिकता होगी, वह अधिक लोगों तक संप्रेषणीय होगी । (सहज कविता-अंक-२ अप्रैल-जून १९९४) फिर प्रश्न उठ सकता है कि कविता के सामान्य पाठक कौन लोग हैं । अध्यापन, लेखन, पत्रकारिता आदि से इतर निम्न-मध्यवर्ग या निम्नवर्ग के शिक्षित लोग इस दायरे में आ सकते हैं। क्या कविता इन तक पहुंची है या पहुंच सकती है ? मध्यकालीन कवियों और स्वाधीनता-संग्राम के दिनों के कुछ कवियों को जाने दें तो हमेशा कविता का आस्वादन ऐसा जन-समुदाय ही करता रहा है, जिसकी विशिष्ट अभिरुचि और संस्कार रहे हैं । अधिसंख्यक जनसाधारण में तो उनका 'लोकसाहित्य' मुखर और लोकप्रिय है । ऐसी स्थिति में न केवल कविता को जन समुदाय तक ले जाने की जरूरत है, अपितु जन समुदाय को भी कविता के पास लाने के लिए व्यापक स्तर पर प्रयास आवश्यक है और यह काम केवल कवियों के बूते का नहीं है, एक सांस्कृतिक दृष्टि और नीति के तहत इस दिशा में काम होना चाहिए । आज 'मीडिया' का आकर्षण और दबाव छपे हुए शब्द को चुनौती दे रहा है । ऐसी स्थिति में कवि-कर्म का महत्व और भी बढ़ जाता है ।

आधुनिक कविता के पाठकों की संख्या में ह्रास के कई महत्वपूर्ण कारणों में 'छंद' का तिरस्कार भी एक प्रमुख कारण माना गया है । निश्चय ही 'छंद' संप्रेषण का प्रमुख वाहक है । लेकिन यह विचारणीय है कि पिछले दशकों में छंदोबद्ध रचनाएं खूब लिखी गयी हैं और वे पाठकों तक कितनी पहुंची हैं ? नवगीत, जनगीत को सामान्य पाठकों ने कितना आत्मसात् किया है ? केवल छंद में रचित काव्य संप्रेषणीय होगा, यह एक मिथ्या धारणा है । सहज संप्रेषणीय कविता मुक्त छंद में भी लिखी जा सकती है । भवानी माई की कई कविताएं इसका प्रमाण है । छंदोबद्ध - काव्य को लोकप्रिय बनाने का नुस्खा नागार्जुन के पास है । इस संदर्भ में राजीव सक्सेना ने लिखा है - "तब सुरक्षित मार्ग यही है कि छंद-रचना का स्वागत किया जाए और जहां कवितात्मकता पैदा करते हुए गद्य लिखा जा सकता है, उसकी स्वतंत्रता की रक्षा की जाए ।" (सहज कविता-अंक-२, अप्रैल-जून १९९४)

'सहज कविता' आन्दोलन के रूप में स्थापित नहीं हुई, न सातवें दशक में और न दसवें दशक में । यह एक शुभ लक्षण है । आंदोलन का रूप लेने पर गढ़ी हुई रचनाओं के सामने आने की आशंका बलवती होती है । फिर कवि कविता न लिखकर 'विचार कविता' या 'अकविता' लिखने लगता है, वह कहानी न लिखकर

'समान्तर' या सक्रिय कहानी लिखने लगता है । अत: यह अच्छा ही हुआ कि 'सहज कविता' का आंदोलनधर्मी संकाय नहीं बना ।

आखिर में एक प्रश्न और । प्राय: यह प्रश्न प्रगतिशील सोच के रचनाकारों के मन में उठता है कि जब प्रगतिशील काव्य की व्यापक अवधारणा हमारे पास है, तब 'सहज कविता' या 'विशुद्ध कविता' जैसे स्वरों की क्या प्रासंगिकता है ? इसमें संदेह नहीं कि प्रगतिशील कविता में 'कथ्य', 'भाषा', 'छंद', 'संप्रेषण', 'अभिव्यंजना' आदि को लेकर जनसंपृक्ति का भाव प्रबल और प्रखर है । वहां भी 'असहजता' का समर्थन नहीं है । फिर भी 'विचारधारा' का दुराग्रह और भारतीय काव्य परम्परा की लगभग उपेक्षा - ये दो ऐसे तत्व हैं, जो प्रगतिशील काव्य के सामने प्रश्नचिन्ह खड़ा कर देते हैं । 'सहज कविता' में अपनी परम्परा की जड़ों को टटोलने की गुंजाइश भी दिखायी देती है । यह 'विचारधारा' के आरोपण के पक्ष में नहीं है इसलिए 'सहज कविता' द्वारा उठाये गये बहुत से मुद्दे एकदम नये न होने पर भी आज के संदर्भ में मौजूं हैं और समकालीन रचनाशीलता में कारगर हस्तक्षेप करने में समर्थ हैं । यह अवधारणा कविता के प्रति ईमानदार चिंता से प्रेरित है । कविता का अर्थ है, रागात्मकता और संवेदना की उपस्थिति, जिसकी आधुनिक जीवन में लगातार कमी होती जा रही है, यानी कि 'सहजता' का प्रश्न केवल कविता तक सीमित न रहकर हमारे रागात्मक संवेदन से सीधे संबद्ध है और इसकी सुरक्षा के प्रति चिंता का भाव आज पर्याप्त प्रासंगिक और मूल्यवान् है ।

-वेद प्रकाश अमिताभ (अलीगढ़)

'सहज कविता' : कविता की सहजता

कविता के गुणों में सहजता स्वत: निहित है, इसलिए उसमें 'सहज' विशेषण लगाने की आवश्यकता ही नहीं है । जहां असहजता है, वहां कविता हो ही नहीं सकती । सहजता कविता का अनुपदिक गुण या धर्म है । जिस प्रकार धूप और छाया में सहज या समवाय-सम्बन्ध है उसी प्रकार कविता और सहजता में समवाय या अविच्छेद्य सम्बन्ध है । धूप के बिना छाया की कल्पना जिस प्रकार असम्भव है, उसी प्रकार सहजता के बिना कविता की कल्पना नहीं की जा सकती ।

काव्य के शोभावर्धक गुणों में अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, कल्पना और सौंदर्य जैसे तत्वों की गणना होती है । परन्तु 'सहजता' का तारतम्य प्रत्येक गुण के लिए

अनिवार्य है । अलंकार भी हो तो सहज हो और बिम्बोद्भावना में भी सहजता हो । इसी प्रकार प्रतीक - विनियोग में भी सहजता अपेक्षित है । कल्पना भी सहज होनी चाहिए, क्लिष्ट नहीं । और फिर सौन्दर्य की अभिव्यंजकता तो सहज होनी ही चाहिए । सौन्दर्य की सहजता का समर्थन महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक में वल्कलधारिणी शकुन्तला के सौन्दर्य वर्णन के क्रम में किया है :-

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।

अर्थात्, वल्कल में लिपटी हुई भी यह तन्वंगी अधिक मनोरम मालूम होती है ; क्योंकि मधुर आकृति वाले को मण्डन या अलंकार की आवश्यकता नहीं होती । इसी प्रकार कविता कामिनी भी सहज मधुर होती है । बलात् अलंकारों और बिम्बों की योजना या प्रतीकोद्भावना से उसमें असहजता आ जाती है । इसी सन्दर्भ में आचार्य मम्मट की काव्य-परिभाषा, जिसमें कविता की सहजता की वकालत की गई है, दृष्टव्य है :

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वाणि ।'

अर्थात्, काव्य के शब्द और अर्थ को निर्दोष तथा गुण सहित होना चाहिए, साथ ही अलंकृत भी और कहीं अनलंकृत भी हो, तो अनुचित नहीं ; क्योंकि इसमें सहजता है । इसी प्रकार पद संघटना या पदशय्या भी, जिसे रीति या शैली कहते हैं तो सहज होनी चाहिए । इससे स्पष्ट है कि सहजता कविता की अनुवर्त्तिनी भी है । सहजता ही काव्य का जीवन है, सहज भावबोध ही उसका प्राण है ।

डॉ० जगदीश गुप्तजी ने अपनी समकालीन कविताओं की विवेचना से सम्बद्ध कृति 'नई कविता : स्वरूप और समस्याएं' , में 'नई कविता : किसिम-किसिम की कविता' शीर्षक लेख लें कविता-आन्दोलनों के नामकरण की लम्बी सूची (लगभग पैंतालीस ; जैसे 'सनातन सूर्योदयी कविता', 'अपरम्परावादी कविता', 'साठोत्तरी कविता', 'अकविता', 'विद्रोही कविता', 'स्वस्थ कविता' आदि) उपन्यस्त की है । डॉ० सुधेश जी द्वारा प्रवर्तित 'सहज कविता' नामकरण उक्त कविता-आन्दोलनों की श्रृंखला की ही एक कड़ी के रूप में माना जायगा । खेद है कि उक्त कविता-आन्दोलनों से समकालीन कविता की अन्तर्वस्तु का परिचय बहुत कम प्रस्तुत हुआ है, जिससे आज के कविता-साहित्य के सन्दर्भ में गम्भीर चिन्तन भी अपेक्षित रूप में नहीं हो पाया है, यद्यपि समसामयिक कविता पर साहित्यालोचन-जगत् में काफी कुछ कहा -सुनी हुई है । परन्तु, यह कहा-सुनी अथवा वाद-विवाद

आन्दोलनात्मक पक्ष पर ही अधिक हुआ है, जिसमें व्यूहबद्ध होकर या अलग-अलग खेमों में बंटकर एक दूसरे के विरुद्ध आरोप प्रत्यारोपण, खण्डन-मण्डन और फिर अपने को ही प्रतिष्ठित करने की अनपेक्षित दुरभिसन्धि के प्रयास अधिक हुए हैं ।

डॉ० सुधेशजी द्वारा प्रवर्तित कविता-आन्दोलन 'सहज कविता' की सार्थकता इस अर्थ में है कि तथाकथित आन्दोलनों के कारण समकालीन कविताओं में जो असहजता आ गई है, उसे वे सहजता की ओर ले चलना चाहते हैं । यदि 'सहज कविता' के माध्यम से समकालीन हिन्दी कविता की अन्तरचेतना में निहित व्यापक तनावों और घात-प्रतिघातों का सच्चा परिचय हिन्दी-जगत् को मिल सकेगा, तो अवश्य ही 'सहज कविता' नाम की अपनी अन्वर्थता होगी और यह आन्दोलन अपने पूर्ववर्ती समस्त विघटनकारी आन्दोलनों को भूमिसात् करके एक रचनात्मक आन्दोलन की ऐतिहासिक क्रोशशिला स्थापित करेगा ।

'सहज कविता' से हम आशा करते हैं, यह समकालीन विविध काव्यान्दोलनों की न तो जन्मकुण्डली बनाने में अभिरुचि रखेगी, न ही अपने को या अपनों को प्रतिष्ठित करने का संकीर्ण प्रयास करेगी । 'सहज कविता पूर्णतः भारतीय रहकर पश्चिमी काव्यान्दोलनों से अपने को जबरदस्ती जोड़ने का कभी प्रयत्न नहीं करेगी और न ही यह शाश्वत प्रश्नों पर अपने पूर्वाग्रही रूढ़ विचारों को थोपने या उन्हें जटिल दुग्रह शब्दावलियों में, जो सामान्य पाठकों के लिए बोधगम्य न हों, रखने का दुष्प्रयास करेगी । तभी, 'सहज कविता' निस्सन्देह जन-सम्प्रेषणीय बनकर अपने नाम के अनुरूप सार्वभौम और सार्वजनीन बनेगी ।

-श्रीरंजन सूरिदेव (पटना)

समकालीन हिन्दी-ग़ज़ल : संयमित शिल्प-काव्य की दरकार

मैं परम्परा से कटकर और काटकर समकालीन हिन्दी-ग़ज़ल का भविष्य नहीं देखता, लेकिन इसका यह, मतलब कतई नहीं कि ग़ज़ल परम्परा में ही पर्यवसित होती है । ग़ज़ल की विस्तृति पर डॉ० माजदा असद का यह अभिमत मेरे कथ्य की आईनादारी करता है, "साहित्य और समाज में ग़ज़ल का वही स्थान है, जो किसी भरे-पूरे घर में एक अलबेली सुन्दरी का होता है । उसके चाहने वालों में बड़े-बूढ़े, औरत-मर्द, सूफी, योग्य, अयोग्य, ज्ञानी और अज्ञानी सभी होते हैं ।

कुछ उसके अल्हड़पन के दिलदार हैं, कुछ उसकी शोखियों पर मरते हैं, कुछ उसकी धीरता-गम्भीरता और रख-रखाव पर आसक्त हैं तो कुछ हाव-भाव, चाव चोंचले पर नाक-भौं चढ़ाते हैं ।''

किसी भी भाषा का अपना निजत्व होता है । वह उसकी 'पहचान' होती है । प्रत्येक भाषा और सहित्य की अपनी परम्परा, प्रवृत्ति और संस्कार होते हैं जो उस भाषा-भाषी क्षेत्र की जातीय पहचान से सम्बद्ध होते हैं । यदि किसी साहित्यिक विधा का किसी अन्य साहित्यिक परिवेश में आगमन होता है तो देखना यह ज़रूरी हो जाता है कि आगत विधा के प्रति स्वागत-भाव रखने वाला साहित्यकार कैसा नज़रिया अपनाता है ? क्या वह उसे उसकी पूर्व परम्परा से अपृथक मानता है या संस्कारों से मंडित करना चाहता है । प्राय: क्रान्तिदर्शी कवि विधाओं को अपने रंग में रंगकर प्रस्तुत करता है । उस प्रर्वतक कवि की प्रतिभा का अनुधावन दूसरे भी करने लगते हैं । अनुधावक कवि यदि व्यक्तित्व-सम्पन्न है तो वह विधा-विशेष की संभावनाओं को सम्बर्द्धित करता है अन्यथा 'दृष्टिहीन' सृष्टि सामने आने लगती है ।

समकालीन ग़ज़ल को ताज़ा, टटके, तेज़ और पारम्परिक कथ्य से सीधे जोड़ने की आवश्यकता है । अशोक द्विवेदी का समकालीन ग़ज़ल की बहुकोणीय अस्मिता को रेखांकित करता हुआ अभिमत है-''समकालीन ग़ज़ल शब्दों की कारीगरी और उसके चमत्कार से अलग, अपनी सहज अभिव्यक्ति और सहज अभिव्यंजना के कारण विस्तार पा रही है । समकालीन ग़ज़लकार अपनी पकड़ और कथ्य की नवीनता के कारण किसी परिचय का मोहताज नहीं है । समकालीन ग़ज़ल में व्यवस्था के खोखलेपन, मानबीय त्रासदियों, अवसाद और विडम्बनाओं को विसंगतिपरक भाषा में व्यक्त किया गया है । अभिव्यक्ति की इस नई मुद्रा में अर्थ- गाम्भीर्य और गहराई है ।''

ग़ज़ल की तमाम ख़ामियों में एक सबसे बड़ा खामी यह है कि कुछ ग़ज़ल के शिल्प, व्याकरण से बगैर परिचित हुए ग़ज़लें लिख रहे हैं । ऐसे में डॉ० वेद प्रकाश 'अमिताभ' की यह चिन्ता वाजिब नज़र आती है - ''ग़ज़ल लिखना हंसी-खेल नहीं है । बिना उसके 'क्राफ्ट' से परिचित हुए इस विधा में आजमाइश द्रविड़ प्राणायाम है । समकालीन ग़ज़ल की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसकी धारा कभी 'रोमानी' नहीं रही । यह हमेशा जनधर्मी और समाज बोधी रही है ।'' दुष्यन्त कुमार ने ग़ज़ल के माध्यम से जो तोहफा दिया वह जीवन की खुशबू से भीगा हुआ

फूल था । आज ज़रूरत दुष्यन्त कुमार के अंधानुकरण की नहीं, सार्थक रचने और रचते जाने की है । व्यक्तित्व-व्यंजकता और कथन की जीवन्तता ग़ज़ल की ही नहीं, किसी भी कला की अस्मिता होती है । जब तक ये विशेषताएं ग़ज़ल में नहीं उभरेंगी तब तक वह वास्तव में ग़ज़ल नहीं होगी । स्थिति के अनुसार अब हिन्दी भोजपुरी ग़ज़लकारों को साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिये बहुत जोर से चीखने-चिल्लाने, आक्रामक तेवर दिखाने और नाटकीय प्रतिक्रियाएं प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं रही । यह समय ग़ज़ल के सूक्ष्म तात्विक सूत्रों को जांचने, परखने, खोजने और प्रायोगिकता की सब्ज़ ज़मीन पर उकेरने-उरेहने का है ।

-डॉ० मधुर नज्मी

सहज कविता की प्रासंगिकता

सहज कविता अनेक प्रयोगों से निकल कर आज जिस मोड़ पर पहुंचना चाहती है, वह आम आदमी के प्रति उसकी संवेदनशीलता का परिणाम है । सच पूछा जाए तो कविता एक लम्बे अरसे से उस सहृदय से कटी रही है जिसके लिए वह बनी है । आज हिन्दी कविता बन्द कमरों की गोष्ठियों तक सिमटती जा रही है और कवि सम्मेलनों की जगह खुले मुशायरे हिन्दी काव्य प्रेमियों को आकर्षित करते हैं । उर्दू की ग़ज़लें पहले की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुई हैं, जबकि उर्दू का पठन-पाठन हिन्दी भाषी लोगों में पहले की अपेक्षा कम है । यह कहीं न कहीं हिन्दी कविता की लयहीनता से जुड़ी हुई समस्या है ।

आजकल प्राय: छंदमुक्त कविताओं और उनके कवियों का ज़िक्र ही अक्सर आता है चाहे वह जनवादी संदर्भ हो या इससे इतर का । ऐसी कविताएं काव्य प्रेमियों को निराश करने और सच्ची रचनाओं को हतोत्साहित करने की भूमिका निभा रही हैं । इस प्रसंग में मुझे आचार्य रामचन्द शुक्ल की बात स्मरण हो आती है जो उन्होंने हिन्दी की भाषिक संरचना और कविता की लय के संदर्भ में कही है - "नाद-सौंदर्य से कविता की आयु बढ़ती है । तालपत्र, भोजपत्र, कागद आदि का आश्रय छूट जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगों की जिह्वा पर नाचती रहती है । अत: नाद-सौंदर्य का योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप खड़ा करने के लिए कुछ न कुछ आवश्यक है । इसे हम बिल्कुल हटा नहीं सकते । संस्कृत से सम्बन्ध

रखने वाली भाषाओं में नाद-सौंदर्य के समावेश के लिए बहुत अवकाश रहता है । अत: अंग्रेज़ी आदि भाषा की देखा-देखी, जिनमें इसके लिए कम जगह है, अपनी कविता को हम इस विशेषता से वंचित कैसे कर सकते हैं ।'' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यह चिन्ता संस्कृत से सम्बन्ध रखने वाली भाषाओं में कविता की आन्तरिक लय की हिमायत करती है । आज की सहज कविता में शुक्ल जी की लय सम्बन्धी हिमायत का पूर्ण दर्शन होता है ।

आज की कविता-का सबसे बड़ा दोष है कविता में आन्तरिक लय का अभाव । इस अभाव को कुतर्कों के आधार पर समाप्त नहीं किया जा सकता है । मेरी समझ से ऐसी कविताओं को बेनक़ाब करने की जरूरत है जो जनमानस को काव्य-रुचि से विरत करती हैं । हिन्दी कविता के आधुनिक होने की शर्त बहुत से समीक्षकों की दृष्टि में उसका सामाजिक सरोकार और उसकी प्रतिबद्धता के विभिन्न रंग और रूप होते हैं । संभवत: इसीलिए सपाट बयान के सिद्धान्त भी गढ़े गये । अगर सोद्देश्य लेखन के लिए कविता अपना स्वभाव और संस्कार छोड़ दे तो वह प्रयोगशीलता के बावजूद गद्य हो जाती है । यह लयहीन गद्य काव्य प्रेमियों को सामाजिक सरोकार की जगह कविता के सरोकार जैसे प्रश्नों पर सोचने को विवश करता है । कविता के नाम पर गद्य को कौन काव्य प्रेमी स्वीकार करेगा ।

काव्य साहित्य के इतिहास में निराला, पन्त, दिनकर, बच्चन, भवानी प्रसाद मिश्र प्रभृति सहज कविता को अमर कर चुके हैं । इसका विकास वरेण्य है । छांदसिक तात्विकता से हटकर कविता की अस्मिता मर जायेगी । मेरी दृष्टि में कविता वही है जो बिना बौद्धिक व्यायाम के हृदय में सीधे उतर जाए । 'गेयता' कविता की आत्मा है । शब्दों का जाल बुनकर उसे कविता का नाम देना उचित नहीं है । लयात्मकता के अभाव में कविता भले ही पढ़ ली जाए किन्तु हृदय को रससिक्त नहीं कर सकती । लय से रहित कविता निर्गन्ध पलाश की भांति है ।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गद्यनुमा कविता की तुलना में लय-प्रधान कविता ज़्यादा प्रभावी है और हृदयस्पर्शी है । अत: सहज कविता की प्रासंगिकता असंदिग्ध है । -सुरेश चन्द्र शर्मा (सुल्तानपुर, उ० प्र०)

मूल्यांकन

डॉ० गोपाल बाबू शर्मा के प्रस्तुत कविता-संग्रह 'कूल से बंधा है जल' [१] में अनुभूति की दृष्टि से विविध रूप दिखाई देते हैं । निबन्ध, समीक्षा, व्यंग्य, बाल-साहित्य और कविता के क्षेत्र में लेखन के स्तर पर सक्रिय रहे डॉ० शर्मा की मूल चेतना व्यंग्य में मुखर हुई है । जहां तक कविता का प्रसंग है, उन्होंने गीत, ग़ज़ल, व्यंग्य और बाल-गीत लिखे हैं । प्रस्तुत संकलन के प्रारंभिक अंश में रूप और सौन्दर्य के गीत रखे गये हैं । तरुणाई में प्रेम की संकरी गली से गुजरते समय भावों का जो ज्वार आता है, वह प्रायः व्यक्ति को कवि बना देता है । डॉ० शर्मा के इन गीतों का बीज-भाव वेदना और करुणा है । प्रेम-व्यापार में अनुभूत प्रतीक्षा, निष्ठुरता, निराशा, उपालम्भ आदि को अभिव्यक्ति मिली है । संसार के सारे आकर्षण, आलोकित रातें और सुनहरे दिन उन्हें अपनी प्रिया के बिना भार प्रतीत होते हैं

जग के आकर्षण अनगिन हैं,
झिलमिल रात सुनहरे दिन हैं,
लेकिन तुम बिन सूना जीवन,
लगता मुझको भार सलोने !

कवि अपनी इस विचलन के स्थिति से ऊब कर निर्बन्ध विचरण का निश्चय कर लेता है, वह किसी की सहानुभूति नहीं चाहता और कहता है -

जैसे रहता हूं , रहने दो,
जैसे बहता हूं , बहने दो,
मैं आकुल प्राणों की वीणा,
जैसे सहता हूं, सहने दो ।

संकलन के मध्य भाग में प्रगति और निर्माण-विषयक रचनाएं संकलित हैं । इनमें युवा पीढ़ी को दिशा-निर्देश और बाधाओं से संघर्ष करने का संदेश है । इन गीतों में कवि की उपदेशात्मक भंगिमा रही है । 'रुकने का नाम न लो' गीत में कवि ने तरुणों का इन शब्दों में आह्वान किया है -

संघर्षों में पलना सीखो,
तूफानों मे चलना सीखो ।

फूलों से प्यार हुआ तो क्या,
अंगारों में जलना सीखो ।

पुस्तक के अंतिम अंश में व्यंग्य परक कविताएं हैं । व्यंग्य में कवि की मूल चेतना होने का कारण यह रचनाएं अपना विशेष प्रभाव छोड़ती हैं । 'कूल से बंधा है जल' गीतसंग्रह डॉ० गोपाल बाबू शर्मा के कवि-कर्म का एक मनोरम दस्तावेज है । -विद्यानन्दन राजीव (शिवपुरी, म० प्र०)

[१] *कूल से बंधा है जल (काव्य-संग्रह), रचनाकार डॉ० गोपाल बाबू शर्मा, प्रकाशक : गिरनार प्रकाशन, पिलाजी गंज, मेहसाना (गुजरात) संस्करण-१९९५. पृष्ठ-६४, मूल्य-चालीस रुपये ।*

* * *

'फागुन मांगे भुजपाश' [२] सुपरिचित कवि चन्द्रसेन विराट का आठवां ग़ज़ल संग्रह है । इनके अतिरिक्त उनके दस गीत संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं । प्रचुर काव्य रचनाओं के बावजूद अब तक उनका मूल्यांकन नहीं हुआ है । यह आलोचकों द्वारा गीत विधा की उपेक्षा का परिणाम है । विराट जी के प्रस्तुत संग्रह की ग़ज़लों को पढ़कर मुझे लगा कि हिन्दी में ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल की अनुगामिनी भर नहीं रह गई है, बल्कि उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व उभर रहा है ।

यद्यपि पुस्तक का शीर्षक बड़ा रोमानी है, और अनेक ग़ज़लों में प्रेम की मादक अनुभूतियों तथा सौन्दर्य के टटके चित्रों की प्रदर्शनी है, तथापि जीवन-जगत के व्यापक तथा गहरे यथार्थ के विविध कोणों की मार्मिक व्यंजना अनेक ग़ज़लों में मिलती है । अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक प्रश्नों से कवि जूझता है, और उसकी अभिव्यक्ति बड़ी सहज, परिष्कृत व प्रभावपूर्ण है ।

विराटजी ने पुस्तक में अपना कोई वक्तव्य नहीं रखा है, पर एक ग़ज़ल में जब वे लिखते हैं - 'शुद्ध हिन्दी ग़ज़ल का आदर्श है / शिल्प-शैली तत्समी पर्याप्त है', तो स्पष्ट हो जाता है कि वे शुद्ध हिन्दी की तत्समी शैली की ग़ज़ल के समर्थक हैं । यह बात उनकी सदिच्छा तक सीमित नहीं रही है, पर उन्होंने अपनी ग़ज़लों में यह कमाल कर दिखाया है । ग़ज़ल के रदीफ़ क़ाफ़िये वाले रूपाकार को अपनाकर भी उन्होंने रदीफ़ अर्थात् तुकान्त और क़ाफ़िये में अनेक स्थानों पर

भुजपाश, अवकाश, संजीवनी, पर्याप्त, अवधारणा, वास्तविक, मांगलिक, सामयिक, वृक्ष जैसे तत्सम शब्दों का कुशल प्रयोग किया है । उर्दू - फारसी रदीफ़ों (तुकान्तों) का उन्होंने बहिष्कार कर दिया है और क़ाफ़िये में भी अनेकश: तत्सम शब्दों को रखा है । अनेक ग़ज़लकार उर्दू ग़ज़लों में प्रचलित रदीफ़ों और क़ाफ़ियों से मुक्ति नहीं पा सके हैं, पर विराटजी ने ग़ज़ल में अपनी नई शैली विकसित की है, जिसे तत्समी शैली कह सकते हैं । तत्सम शब्दों के प्रयोग भी अनेक स्थलों पर मार्मिक बन पड़े हैं, जैसे इस शेर में देखिये -

'आंख में थोड़ी नमी पर्याप्त है,
आदमी हो आदमी पर्याप्त है । (पृ० ६४)

यहां रदीफ़ में 'पर्याप्त है', पर क़ाफ़िये में नमी और आदमी रख कर संस्कृत की तत्समता से ऊपर उठकर बोलचाल की भाषा के प्रवाह की रक्षा की गयी है । कहीं क़ाफ़िये को छोड़ दिया गया है, जैसे 'धूप हेमन्त की' शीर्षक ग़ज़ल में । कुछ ग़ज़लें मुझे शब्दाडम्बर लगीं, जैसे 'दूर हो पास हो' शीर्षक ग़ज़ल । वस्तुत: किसी ग़ज़ल को शीर्षक की आवश्यकता नहीं । 'अब घर चलें', 'चांदनी', 'वृक्ष' शीर्षक रचनायें ग़ज़ल कम नज़्म अधिक हैं । ग़ज़ल की शैली के बावजूद ये नज़्में हैं, जिनमें विषयगत एकान्विति है । 'प्रीति का प्रतिकार' विचारणीय प्रयोग है । 'प्रतिकार में विद्वेष मूलक बदले का भाव आता है, प्रतिदान का नहीं । प्रीति का प्रतिदान तो काम्य है, पर प्रीति का प्रतिकार प्रीति का अवमूल्यन है । - सुधेश

[२] फागुन मांगे भुजपाश (ग़ज़ल संग्रह) कवि चन्द्रसेन विराट - भारती भाषा प्रकाशन, ५१८/६ बी विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली ३२, प्रथम सं. सन् १९९३, पृ० ७६, मूल्य ४० रुपये ।

विचार-विमर्श

'सहज कविता' केवल एक पत्रिका नहीं, एक आन्दोलन है । . . .कविता में जटिलता, दुर्बोधता, शब्दजाल और लयविकृति के विरुद्ध विद्रोह का सार्थक स्वर है । हो सकता है, यह कवियों को असरदार अपील करे और कविता लौट कर पुन: प्रकृतिस्थ हो । . . . यह सातवां अंक ग़ज़ल विधा पर प्रभावशाली विचार प्रस्तुत करता है । सम्पादकीय में ग़ज़ल, उर्दू ग़ज़ल, हिन्दी ग़ज़ल, फारसी ग़ज़ल पर

सन्तुलित दृष्टिकोण पठनीय है । . . . ऐसी लघु किन्तु मूल्यवान पत्रिकाओं की साहित्य को बड़ी जरूरत है ।-नलिनी कान्त (अण्डाल)

आपने लय का प्रश्न उठाया है । . . . लय हो या न हो, कविता में कविता होनी चाहिये । प्रधान है अन्तर्वस्तु , रूप नहीं । रूप चाहे दोहा, चौपाई, सवैया छन्द, ग़ज़ल का हो, इससे क्या फर्क पड़ता है ? वक्तव्य क्या है, विचार क्या है, यह अधिक महत्वपूर्ण है । यदि कोई आज की औद्योगिक, वैज्ञानिक, तकनीकी स्थितियों में जीती मानवीय ज़िन्दगी . . .को ग़ज़ल या दोहे में बांध सकता है तो इसमें क्या खराबी है ? कविता का गद्यहीन होना या पद्यहीन होना, तुकान्त होना या अतुकान्त होना अन्तर्वस्तु एवं रचनाकार की मानसिकता और रचना प्रक्रिया पर निर्भर करता है । पर कविता होनी चाहिए, तुकबन्दी नहीं । लय प्रकृति एवं जीवन में प्रत्येक जगह है । अनुशासन में भी है और उच्छृंखलता में भी । मैंने जंगल में जानवरों के जीवन में भी लय का अनुभव किया है, पर सर्कस के जानवरों में नहीं । कृत्रिम जीवन में लय नहीं । अत: यदि रचनाकार का जीवन कृत्रिम नहीं है तो उसकी रचनाओं में लय अपने आप आ जायेगी, रचना छन्दमुक्त हो या छन्दयुक्त । . .आज लगभग ५० प्रतिशत कविता फालतू कविता है । मैं हिन्दी एवं बंगला की बात कर रहा हूं । सतही जीवन गहरी एवं गम्भीर कविता नहीं दे पा रहा । . . कुण्ठा भी कविता में सहज हो सकती है, अगर वह ओढ़ी हुई या कृत्रिम नहीं । -डा० त्रिवेणी प्रकाश त्रिपाठी (कलकत्ता)

'सहज कविता पर पुनर्विचार'(अंक ८) भी पढ़ा । लगा कि चीज़ों का सरलीकरण करने की कोशिश ज़्यादा है । हो सकता है, जिसे आप सहज स्थिति मान लेते हैं, वहीं मेरे लिए असहज हो । अगर जन-जन तक पहुंचने वाली कविता ही सहज है तो थोड़ा रुक कर सोचना पड़ेगा कि फिर तुकड़ कवि बहुत बड़े कवि हैं । गद्य में भी कविता क्यों नहीं हो सकती, यह बात भी मेरी समझ में नहीं आती और छन्द में आते ही कुछ भी कविता कैसे हो सकता है ?
-डा० प्रताप सहगल (दिल्ली)

(मैं इस बात से सहमत हूं कि सहज स्थिति अलग-अलग हो सकती है, पर किसी रचनाकार के लिए सहज स्थिति उसके परिवेश, उसके संस्कार तथा उसकी रुचि पर निर्भर करती है । उसकी रुचि और संस्कार भी निरे वैयक्तिक नहीं हैं, जिनका परिवेश से कोई सम्बन्ध न हो । संवेदनशील रचनाकार के लिए सहज स्थिति समाजनिरपेक्ष नहीं होगी । समाज में अन्याय देख कर अथवा स्वयं अन्याय

का शिकार होकर वह अन्यायकर्ताओं की संगति में सहज नहीं हो सकता । कवि अन्यायकर्ताओं का पक्ष लेगा तो उनकी संगति में उसकी स्थिति असहज ही होगी । जन-जन तक पहुंचनेवाली कविता तुकबन्दी के कारण लोकप्रियता नहीं पाती, बल्कि अपने सन्देश, अपनी प्रासंगिकता तथा सम्प्रेषणक्षमता के कारण जनता में लोकप्रिय होती है । मैंने तुकबन्दी का कहीं समर्थन नहीं किया है और न पद्यमात्र को कविता का पर्यायवाची कहा है। कविता में लय को महत्व अवश्य दिया है और ऐसा करना तुकबन्दी की वकालत नहीं है । मैंने कविता की प्रकृति को गद्य के विपरीत बताया है । देखिये मेरा लेख 'सहज कविता और लय' (अंक ४ अक्तूबर-दिसम्बर १९९४) । कविता में गद्य के गुणों का समावेश करना एक बात है, पर गद्य को ही कविता के आसन पर बिठाना दूसरी बात है । तथाकथित गद्यात्मक कविता के बहाने यही हो रहा है । -सम्पादक)

मैं आप से सहमत हूं कि छन्द लय से ही अनुस्यूत होता है । लय की गति में यति का निबन्धन छन्द का कारण बनता है । लयात्मक छन्दता कविता की सहज प्रकृति है । आज की नई कविता में लय नहीं गति होती है । . . . प्रश्न यह है कि नई कविता को कविता कहें या और कुछ। नई कविता भी अब काव्यविधा की स्थापित शैली बन चुकी है । उसे नकारा तो नहीं जा सकता । उसमें जो गत्यात्मक वैचारिकता है, वह मोहर्ती है । हर नई कविता अच्छी नहीं है, और न हर छन्दबद्ध कविता । -डॉ० दयाकृष्ण विजय (कोटा, राजस्थान)

'सहज कविता' का अंक-८ (दिसम्बर-९५) मिला । 'सहज कविता पर पुनर्विचार' नामक लेख सचमुच सहज कविता का सिंहावलोकन है । . . .गद्य में काव्य लिखे जाने पर आपको शंका है । इसलिए मैंने आज से ४२ साल पहले प्रकाशित 'मन की बातें' नामक अपनी पुस्तक आपकी सेवा में भेजी थी । . . . रायकृष्ण दास की 'साधना' में रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' की गन्ध पाकर मैंने स्वच्छन्द ढंग से यह गद्य-काव्य-संकलन लिखा तथा प्रकाशित किया था । . . .जो कविता सहज तथा छन्दबद्ध हो वह सहज कविता है, पर मैं यह नहीं चाहता कि कविता छिछली हो । सरलता में भी . . .स्वाभाविक गाम्भीर्य और अर्थवत्ता ही उसे कालजयी बना सकती है । अर्थप्रवाह की स्वाभाविक संश्लिष्टगति ही लय हो सकती है । 'अंधेरे में' इस का कमज़ोर उदाहरण है । . . .कोरे गद्य को तोड़कर छोटी-बड़ी पंक्तियों में लिख देना कविता नहीं । वह तो बस अन्तर्बद्ध तत्व है जो गद्य-पद्य दोनों में मिल सकता है । शाब्दिक लय हम 'राम की शक्तिपूजा' और

'बादलराग' में पाते हैं तो 'तुलसीदास' और 'प्रलय की छाया' में अर्थ की लय कुछ हद तक प्राप्त करते हैं । -डॉ० तारिणी चरणदास 'चिदानन्द' (भुवनेश्वर)

'सहज कविता' का सितम्बर ९५ अंक मिला । . . .सम्पादकीय में 'सहज कविता' के भीतर ग़ज़ल को समाविष्ट करने का आप का तार्किक प्रयास सराहनीय है । ग़ज़ल की विशेषता ही है उसकी सहज संवादात्मकता में । कभी यह संवाद आशिक़-माशूक़ का था तो कभी आश्रित-आश्रय का । बाद में यह संवाद शोषित-शोषक का बना । अब ये पक्ष जनता और सत्ता बन गये हैं । यह यात्रा ग़ज़ल के सामन्ती संस्कार से मुक्त होकर लोकतान्त्रिक संस्कार को प्राप्त करने की यात्रा है । . . .एक और बात यह है कि हिन्दी में लिखी ग़ज़ल अनिवार्य रूप से फ़ारसी-अरबी परम्परा का विस्तार न होकर हिन्दी कविता का विस्तार है । उसे समीक्षित भी इसी संदर्भ में किया जाना चाहिए और इसी दृष्टि से उसके नए अभिधानों को भी देखा जाना अपेक्षित है । . . .ग़ज़ल के नाम पर कचरा भी बहुत लिखा गया है और पिष्टपेषण भी बहुत हुआ है । ऐसा आग्रही होने के कारण होता है । आग्रह न हो तो ग़ज़ल 'सहज' ही होगी । -डॉ० ऋषभदेव शर्मा (हैदराबाद - आ. प्र.)

'सहज कविता' एक गम्भीर वैचारिक व रचनात्मक पत्रिका है ।. . . अभिव्यक्ति की सहजता ही कविता की सहजता की परिभाषा हो सकती है । . . . अंक - ७ ग़ज़ल की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । आपने सम्पादकीय में सहज कविता और ग़ज़ल के अन्त: सम्बन्ध को प्रभावी रूप में अंकित किया है ।
-श्री गोपाल जैन (लक्ष्मणगढ़)

'सहज कविता' (वर्ष-२, अंक-७) के . . .दर्शन हुए । . . .छोटी पत्रिका निकालने वालों को इसकी प्रस्तुति की कमनीयता को आदर्श बनाना चाहिए । . . .अवश्य ही प्रस्तुत अंक से हिन्दी ग़ज़ल के बारे में प्रामाणिक ज्ञानोन्मेष होता है । . . .सहज कविता की व्याख्या में सहज रमणीयता को भी उसके गुणों में समन्वित करना चाहिए । -डॉ० श्री रंजन सूरिदेव (पटना, बिहार)

'सहज कविता' का जुलाई-सितम्बर ९५ का अंक मिला । . . .आप का हिन्दी ग़ज़ल के लिए यह मूल्यवान योगदान है । इससे हिन्दी ग़ज़ल का स्वरूप स्पष्ट करने में सहायता मिलेगी तथा उसे दिशा भी मिलेगी । उर्दू और हिन्दी ग़ज़ल में अन्तर है । यह अन्तर अन्त तक रहेगा । उर्दू में जिस प्रकार हिन्दी गीत के समान गीत नहीं हैं, उसी तरह हिन्दी में उर्दू ग़ज़ल के समान प्रभावकारी ग़ज़ल नहीं हैं । हिन्दी ग़ज़ल वस्तुत: ग़ज़ल का एक नया रूप है, जो विकसित हो रहा

है ।-डॉ० त्रिलोकीनाथ ब्रजबाल (मथुरा उ. प्र.)

जिस दौर में कविता अलोकप्रियता और गिरावट के महासंकट से गुज़र रही है, 'सहज कविता' जैसी पूरी तरह कविता पर केन्द्रित लघु-पत्रिकाएं ही बचा सकती हैं । - डा० बालेन्दु शेखर तिवारी (रांची)

आज जबकि कविता .. 'अकविता', 'नई कविता' या 'नहीं कविता' होती गयी या होती जा रही है, तब 'सहज कविता' की सार्थकता स्वयं सिद्ध है । .. मैं नहीं समझता हूं कि कविता की सहजता पर कोई लम्बी बहस छेड़ने की .. आवश्यकता है । कविता की संप्रेषणीयता ही उसकी सहजता है । .. छंद और लय जिसमें न हो वह तो अपनी भैंस को चाहे जैसे भी बांधना है । छन्द से मेरा तात्पर्य तुक या अनुप्रास मात्र नहीं है । अतुकान्त रचना भी कविता होती है, बशर्तेकि उसमें लयात्मकता हो । -डा० डोमन साहू समीर (देवघर)

आधुनिक कविता पर बहस होती रही है । .. संपादक द्वारा प्रस्तुत इस तथ्य से इनकान नहीं किया जा सकता कि कविता आज आम पाठक से दूर चली गयी है । .. प्रवेशांक से आरम्भ की गयी बहस जब गर्माने लगी तो संपादक ने उससे कन्नी नहीं काटी, बल्कि मतों-प्रतिमतों के बीच से रास्ता बनाते हुए अपनी शिरकत बराबर जारी रखी । छन्द, लय, विम्ब, प्रतीक आदि से आगे बढ़ते हुए उसने भाषा और कला के आयामों में प्रवेश करते हुए आलोचन को वृहत्तर परिप्रेक्ष्य दिया । .. मुझे कविता या कहानी के पहले-पीछी किसी विशेषण-प्रत्यय जोड़ने की आवश्यकता महसूस नहीं होती । आपके सामने शायद अलगाने की मजबूरी थी, वर्ना कविता-कहानी कविता-कहानी से अधिक या उससे कुछ कम कुछ और नहीं । विशेषणों से सज्जित रचनाएं प्राय: आन्दोलननुमा शक्ल अख्तियार कर गयीं और समय की निर्ममता का शिकार हो गयीं । सच्चे और तीव्र भाव संवेदन किसी खींच-तान या दांव-पेंच के मोहताज नहीं होते ।

-डा० ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश' (दिल्ली)

पाठकों से

ऑफसैट मुद्रण के कारण 'सहज कविता' का मूल्य बढ़ाना पड़ा । कवियों, कविता-प्रेमी पाठकों, आलोचकों के सक्रिय रचनात्मक तथा आर्थिक सहयोग से ही इसका प्रकाशन जारी रखा जा सकेगा । जिन वार्षिक सदस्यों का शुल्क समाप्त हो गया, उनसे सदस्यता के नवीनीकरण का आग्रह है । नये सदस्य भी बनायें । नमूने की प्रति वार्षिक सदस्य बननेवालों को ही भेजी जायेगी । - व्यवस्थापक

SAHAJ KAVITA, A Hindi Quarterly /R. No. 59341/94

साहित्य संगम द्वारा प्रकाशित-प्रसारित साहित्य

फिर सुबह होगी ही (काव्य)	डॉ० सुधेश	३० रूपये
घटनाहीनता के विरुद्ध (काव्य)	"	३० रूपये
तेजधूप (काव्य)	"	५० रूपये
आधुनिक हिन्दी और उर्दू काव्य की प्रवृत्तियां (आलोचना)	"	१०० रू०
साहित्य के विविध आयाम (आलोचना)	"	४० रूपये
कविता का सृजन और मूल्यांकन (आलोचना)	"	८० रूपये
साहित्य चिन्तन (आलोचना)	"	८० रूपये
जीवन-मूल्य और स्कन्दगुप्त नाटक (आलोचना)	डॉ० कमलेश सिंह	५० रूपये

आगामी प्रकाशन

सहज कविता की भूमिका (आलोचना)	- डॉ० सुधेश
मन की उड़ान (यूरोपीय यात्रा-वृतान्त)	"
जिये गये शब्द (काव्य)	"
गीत और ग़ज़लें (काव्य)	"
पहली दुनिया में (अमरीका यात्रा-वृतान्त)	"
शेष स्मृतियां (संस्मरण)	"
उर्दू की सर्वश्रेष्ठ कहानियां (कहानी संग्रह)	अनुवादक - सुधेश

प्राप्तिस्थान

साहित्य संगम, डी-३४ विद्याविहार, प्रीतमपुरा, दिल्ली-११००३४

श्रीमती सुशीला शर्मा द्वारा १३३५ पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-११००६७ से प्रकाशित । श्री आदिशक्ति ऑफसेट प्रेस, १४३९-४०, राम नगर, लोनी रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२ द्वारा मुद्रित ।
अवैतनिक सम्पादक - डॉ० सुधेश